



ISSN Print: 2394-7500  
ISSN Online: 2394-5869  
Impact Factor: 8.4  
IJAR 2022; 8(2): 601-603  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
Received: 01-01-2022  
Accepted: 12-02-2022

डॉ. नवाब सिंह

हिन्दी विभाग, रामानुजन कॉलेज,  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,  
भारत

## आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-बोध

डॉ. नवाब सिंह

सारांश

साहित्य की मूल सार्थकता मनुष्य-जीवन की अभिव्यक्ति में है। जीवन के विविध रूपों और रंगों को उसकी सम्पूर्ण कमियों और विशिष्टताओं के साथ प्रस्तुत करना साहित्य का लक्ष्य होता है। निरंतर गतिशील और परिवर्तनशील परिस्थितियों से जीवन भी सतत गतिशील और परिवर्तनशील होता है। जीवन के निरंतर गतिशील और बदलाव से मूल्यों में भी बदलाव होता है। इन मूल्यों के बदलने से संस्कृति में बदलाव आता है। संस्कृति के बदलने से समाज भी गतिशील हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तन और गतिशीलता की चक्र-प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। साहित्य भी अपने कथ्य और रूप के स्तर पर हर काल में इस परिवर्तन और विकास के ऐतिहासिक क्रम में निरंतर गतिमान रहता है। ऐतिहासिक विकास क्रम में मानवीय संवेदनाएं भी जटिल से जटिलतर होती जाती हैं। इन जटिलतर मानवीय संवेदनाओं को उसकी समग्र प्रामाणिकता और वास्तविकता में पकड़ने और प्रस्तुत करने में रचनाकर्म भी उतना ही कठिन और जटिल हो जाता है। आठवें दशक की हिन्दी कहानी इस जटिल जीवन-बोध को पकड़ने के संघर्ष में समर्थ और सफल दिखाई देती है।

**कूटशब्द :** जीवनबोध, मूल्यबोध, मानवीय संवेदनाएं, गतिशील यथार्थ, सामाजिक यथार्थ, वैचारिक दृष्ट, ईमानदार अभिव्यक्ति, विघटन, जटिलताएं, मूल्य संक्रमण, पारम्परिक मूल्य, आधुनिक मूल्य, युगबोध, आत्मबोध, प्रामाणिक अनुभूति

प्रस्तावना

सत्तर के बाद, आठवें दशक की हिन्दी कहानी में न केवल आन्तरिक कथ्य के स्तर पर ही परिवर्तन आया है, अपितु उसकी संवेदना में भी विशिष्ट परिवर्तन आया है। इस दशक की हिन्दी कहानी में व्यक्त जीवन-बोध इतना वैविध्यपूर्ण और अपनी विस्तृति में इतना व्यापक है कि युग-जीवन की कोई भी समस्या, चिंता या प्रश्न ऐसा नहीं है जिसे कहानी का विषय न बनाया गया हो। अध्ययन की सुविधा के लिए आठवें दशक की कहानी के विशिष्ट जीवन-बोध को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : 1. मानवीय सम्बन्ध-बोध 2. सामाजिक-बोध।

मानवीय सम्बन्ध बोध में पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के आपसी रिश्तों, द्वंद्व, टकराव, मूल्य-संक्रमण, पारिवारिक-सम्बन्धों का विघटन, बिखराव तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिलताओं का अध्ययन है। सामाजिक-परिवेश-बोध में परिवेश की असंगतियों, विद्रुपताओं, विकृतियों का, आर्थिक संकट, गरीबी, बेरोजगारी का, जिजीविषा का, ग्रामीण-जीवन-परिवेश का, नगरीय-महानगरीय जीवन-परिवेश का, प्रशासन-तंत्र-व्यवस्था, अथवा राजनीतिक व्यवस्था का, दफतरी-व्यवस्था एवं संस्थानों की स्थितियों का अध्ययन है।

आठवें दशक की कहानी में मानवीय सम्बन्ध-बोध

आजादी के बाद के औद्योगिक युग विघटनकारी प्रवृत्तियों, वैज्ञानिक उन्नति, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी विकास ने आठवें दशक में परम्परागत मूल्यों एवं विश्वासों को न केवल परिवर्तित किया अपितु उन्हें विघटित और जर्जर भी किया। इसके प्रभाव से न केवल परम्परागत सम्बन्धों में दरार आई है बल्कि संयुक्त परिवारों का विघटन भी तेजी से बढ़ा है। इस विघटन से उनके आत्मीय-सम्बन्ध एवं रिश्ते स्नेह-प्रेम शून्य हो गये और सम्बन्ध केवल अर्थाश्रित रह गये।

नयी तकनीकी, वैज्ञानिक साधनों तथा पाश्चात्य संस्कृति के संसर्ग ने नयी पीढ़ी के जीवन शैली, चिन्तन और व्यवहार पद्धति को बदल दिया। इस दृष्टि ने पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक परम्परागत मूल्यों तथा अवधारणाओं को भी बदला। यौन-शुचिता की धारणा को खण्डित कर काम-सम्बन्धों के प्रति खुली दृष्टि को विकसित किया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के नाम पर जीवन-भोग को महत्त्व दिया जाने लगा।

Corresponding Author:

डॉ. नवाब सिंह

हिन्दी विभाग, रामानुजन कॉलेज,  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,  
भारत

सामाजिक दृष्टि से संयुक्त परिवारों का विघटन इस दशक के परिवेश में सम्बन्धों के प्रति एक बदली हुई दृष्टि का ही परिणाम है। इस दशक में पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में सम्प्रेषण एवं मूल्यों का अंतराल आ गया। सरकारी नारा जीवन का नारा यानी 'छोटा परिवार सुखी परिवार' की धारणा बनने लगी। स्त्री का घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर नौकरी करना, उसका आत्मनिर्भर बनना, अपने जीवन-स्तर को विकसित करना आदि ने पारम्परिक मूल्यों को बदल दिया। पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री और पुरुष के नौकरी करने से समाज दो वर्गों में बंट जाते हैं, जिससे उनका आपसी सम्बन्ध भी अमानवीयकरण की प्रक्रिया से गुजरने लगता है। अवधनारायण मुद्गल के संग्रह 'कबंध' की कहानी 'और कुत्ता मान गया' में इस मूल्य-परिवर्तन की पीड़ा को पहचाना जा सकता है। कहानी में 'कुत्ता' ही केवल मानवीय संबंधों को पहचान पाता है और वही अफसर के घर पति पत्नी के बीच सम्बन्ध का माध्यम बनता है, "उस घर का असर ही कुछ ऐसा है कि वहाँ मेरी बीबी भी मुझे नहीं पहचान पाती। हाँ पहचानता है तो वही कुत्ता जिसका मैं आदर करता हूँ, जिससे मेरी भावनात्मक आत्मीयता हो गयी है।"

भौतिकतावादी दृष्टि ने परम्परागत मर्यादा, सम्बन्ध और संयुक्त परिवार को तोड़ दिया। अब भाई-भाई, भाई-बहन, माता-पिता और सन्तान तथा पति-पत्नी के सम्बन्ध अर्थपरक हो गये हैं। आठवें दशक में इस विषय को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी गयी हैं। रमेशचन्द्र शाह के कहानी संग्रह 'जंगल में आग' की 'पक्ष' कहानी, ज्ञानरंजन की 'सपना नहीं' कहानी संग्रह की 'शेष होते हुए', 'सम्बन्ध', 'कलह', 'पिता' आदि में सम्बन्धों का बिखराव है। रमेश बक्षी की 'पिता-दर-पिता' और 'पितृ-ऋण' ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें पिता को बहुत फालतू की स्थिति में देखा गया है। 'पिता-दर-पिता' में बेटा बहुत घृणास्पद भाव से कहता है, "अरे हटाइये पिता-फिता से कुछ नहीं होता और एक भार सिर पर रहता है। अब मुझे देखिए क्या फर्क पड़ता है कि ये मेरे पिता हैं या देवदार का पेड़ मेरे पिता है।" इसी तरह अन्य अनेक कहानियाँ आठवें दशक में लिखी गयी जिनमें पिता-पुत्र सम्बन्ध खत्म प्रायः हो रहे हैं। पिता के साथ-साथ सन्तानों का कटु व्यवहार माता के प्रति भी तीव्र होता जा रहा है जिसे आठवें दशक के कहानीकार गोविन्द मिश्र, राजी सेठ, निरूपमा सेवती, ममता कालिया, राकेश वत्स, सुधा अरोड़ा आदि ने इस सम्बन्ध के टूटने-दरकने को अत्यंत कुशलता से दिखाया है। निरूपमा सेवती के 'आतंक बीज' संग्रह की 'विमोह' में पारिवारिक रिश्तों में कलह का चित्रण है। यह सम्बन्धों का बिखराव या विघटन केवल भाई-भाई, भाई-बहन, माता-पिता और सन्तानों आदि तक ही सीमित नहीं है, पति-पत्नी के सम्बन्धों में भी इसका प्रभाव पड़ा है। गिरिराज किशोर के 'हम प्यार कर लें' संग्रह की कहानी 'ठंडक' तथा इसरायल के 'फर्क' संग्रह की कहानी 'सर्द हवाएं' में पति-पत्नी के संबंधों को सूक्ष्मता से देखा गया है जिसकी जिम्मेदार आर्थिक परिस्थितियाँ हैं।

आठवें दशक की सामाजिक व्यवस्था में सबसे जटिल, पेचीदा और अन्तर्ग्रस्त सम्बन्ध स्त्री-पुरुष संबंध है। शिक्षा-दीक्षा के प्रसार-प्रचार ने स्त्री की स्थिति को बदलकर समृद्ध और विकसित किया है। और अब वह न केवल पुरुषों से कंधा से कंधा मिलाकर चल रही है अपितु उनसे भी आगे निकल गयी है। तथा उसने विवाह, नैतिकता-अनैतिकता, परम्परागत मूल्यों को ताक पर रख दिया है। अब वह दासी न बनकर स्वतन्त्र है, तथा पुरुष प्रधान समाज द्वारा बनाये गये नियमों को चुनौती देती है। आठवें दशक के कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष की स्थितियों-व्यवहारों के सूक्ष्म रोंये-रेशे को पर्त-दर-पर्त उघाड़कर अत्यंत सूक्ष्मता से देखा है। स्त्री-पुरुष के लिए बनाये गये पैमाने-मर्यादाएं नैतिकता के क्षेत्र में भी अलग-अलग रहे हैं। आठवें दशक की कहानियों की स्त्रियाँ उसे भरपूर चुनौती देती हैं। वे कहती हैं कि जब पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से प्रेम कर

सकता है तो स्त्री क्यों नहीं किसी पुरुष से प्रेम कर सकती। निरूपमा सेवती के संग्रह 'आतंक बीज' की 'बद्धमुष्टि' तथा 'सबमें से एक' कहानी में इस स्थिति को दिखाया गया है। सिम्मी हर्षिता के 'कमरे में बन्द आभास' संग्रह के 'उसका मन' कहानी तथा कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी 'गलियारे' भी स्त्री-पुरुष के लिए बनाये गये दुहरे मानदण्डों को खुलकर चुनौती देती है, "पति का अहं ठहरा - वह नहीं चाहेगा कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष के विषय में सोचे भी, जबकि पति कितनी बार प्यार करके अछूता और ब्याहा का अनब्याहा बन जाता है।" कहानी की जिन नारियों ने इस स्थिति के प्रति विद्रोह कर स्वयं अपने लिए भी पुरुष द्वारा स्वीकृत मार्ग अपनाया है उन्हें दीप्ति खण्डेलवाल की कहानियों में बहुतायत से देखा जा सकता है। 'वह' कहानी में नीलम से जब उसका पति मिलन के प्रगाढ़ क्षणों में जब यह पूछता है कि, "बाई दवे, तुम मेरे पहले कितनों के साथ सोई हो, डार्लिंग?" तो वह तपाक से उत्तर देती है, "मैंने कोई अकाउन्ट ही नहीं रखा।" तथा "इट हार्डली मैटर्स" कहकर उसे ऐसी चोट देती है कि पति हक्का बक्का रह जाता है। दीप्ति खंडेलवाल के कहानी संग्रह 'सलीब पर' पर आलोचक मधुरेश का कहना है कि 'अधिकांश कहानियाँ स्थितियों और पात्रों को लेकर सरलीकरण का शिकार है। कहीं-कहीं परंपरा और संस्कार के नाम पर आधुनिकता का सवाल और सतही विरोध भी इन कहानियों में देखा जा सकता है।" इस प्रकार आठवें दशक के कहानीकारों ने समाज में स्त्री-पुरुष के दोहरे नैतिक मानदण्डों पर खुब खुलकर आक्रमण किया है।

स्त्री-पुरुष के लिए अलग-अलग नैतिकता के सवाल की तरह ही इन सम्बन्धों में दूसरा प्रमुख प्रश्न है- नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व और अस्मिता का। इस दौर की नारियों ने पुरुष द्वारा बनाये गये बन्धनों को तोड़ दिया है। और अब वह खुद निर्णय लेने लगी है। मृदुला गर्ग की 'डैफोडिल जल रहे हैं' संग्रह की 'मेरा' कहानी में इस सवाल को इस रूप में उठाया गया है कि स्त्री को कब मातृत्व धारण करना है, कब उसे खारिज करना है, इसका निर्णय सिर्फ उसका पति नहीं ले सकता। जो अपने अंश को कोख में पाल रही है, यह उसका भी अधिकार है कि वह निर्णय कर सके कि मां बने या न बनें। इसी तरह, सांत्वना निगम की 'पख' तथा मेहरून्सिसा परवेज की 'साल की पहली रात' तथा 'ढहता कुतुबमीनार' आदि अनेक कहानियों में स्त्री पात्रों में एक अभूतपूर्व विश्वास देखा जा सकता है। नारी स्वातन्त्र्य के साथ साथ नारी के आर्थिक स्वावलम्बन पक्ष को लेकर भी आठवें दशक में अनेक कहानियाँ लिखी गयी हैं। नारी के आर्थिक स्वावलम्बन बनने से उसे अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ता है, उसे घर, पति, बच्चे, परिवार तथा बाहर ऑफिस आदि के दायित्वों को भी निभाना पड़ता है। महिला कहानीकारों ने नारी की इस स्थिति को अपने अनुभव की प्रामाणिकता एवं गहराई से अत्यंत सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है। मालती जोशी की 'मध्यांतर' कहानी मध्यवित्त परिवार की नारी की नौकरी करने की विवशताओं, नौकरी करते हुए घर-जीवन की चक्की में और बुरी तरह से पिसने, अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को पूर्णतः बाधित करने, पति द्वारा बाहर निकलती पत्नी को शक के निगाहों से देखने, नौकरी के ही कारण अपनी चाहत का अगला बच्चा अभी न पाने की मजबूरी, अपनी सहकर्मी स्त्रियों को स्वयं के ऊपर खूब खर्च करते देखकर अपनी इच्छाओं का गला घोटना आदि संदर्भ उभरते हैं। ऐसी त्रासद स्थितियों का मार्मिक चित्रण इस दशक की अनेक कथा लेखिकाओं- मणिका मोहनी, सिम्मी हर्षिता, निरूपमा सेवती, सूर्यबाला आदि की कहानियों में अत्यंत सशक्त रूप में हुआ है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न प्रेम और विवाह का है। आधुनिक समाज में विवाह और प्रेम की सापेक्षिक और पारस्परिक स्थिति - दोनों स्थितियों में मूल्य के स्तर पर एक भारी बदलाव आया है। आठवें दशक की हिन्दी कहानियों में प्रेम और विवाह सम्बन्धी इस बदली हुई दृष्टि के स्पष्ट उदाहरण

देखे जा सकते हैं। पुरुष और स्त्री दोनों कहानीकारों की दृष्टियों में प्रेम और विवाह के आधार पर प्रेम को मात्र एक भुलावा माना गया है। रमेश बक्षी की 'पिता-दर-पिता' संग्रह में तथा जगदीश चतुर्वेदी की 'निहंग' संग्रह की कहानियों में विवाह संस्था को नकारकर मुक्त-काम भोग की दृष्टि मिलती है। जगदीश चतुर्वेदी की 'फ्लर्ट' कहानी का यह कथन इसी दृष्टि का परिचायक है, "केवल चार-पांच कच्ची पक्की रोटियां दोनो टाइम खाने और खानदान चलाने के नाम पर व्याभिचार करने के सिवाय और क्या मिलता है शादी में।" महिला कहानीकारों ने भी विवाह के संबंध में ऐसी ही सोच का परिचय दिया है, जहां विवाह को मात्र एक बकवास, धंधा या पेशा ही बताया गया है। ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, निरूपमा सेवती, मृदुला गर्गा, दीप्ति खण्डेलवाल आदि ने अपनी कहानी में विवाह को घातक बताया है। निरूपमा सेवती के 'आतंकबीज' की 'तलफलाहट' तथा 'बद्धमुष्टि' कहानियों में विवाह को नारी व्यक्तित्व के लिए घातक बताया है।

विवाह और प्रेम संबंधी मूल्यों से जुड़ा हुआ प्रश्न नारी के मातृत्व का भी है। आठवें दशक की हिन्दी कहानी में मातृत्व के प्रति दो प्रकार की दृष्टि मिलती है - स्वीकार की तथा अस्वीकार की। स्वीकार की दृष्टि वहां है जहां नारी बच्चे के लिए तरसती दिखायी गयी है। नौकरी करने वाली नारियां अपने बच्चों पर पूरा ध्यान नहीं दे पाती, बच्चों का सही रख रखाव, नहलाने-धुलाने, खिलाने, दुलारने के लिए उनके हृदय में चीत्कार सी उठती है। मालती जोशी की 'मध्यांतर', चित्रा मुद्गल की 'दरमियान', इन्दु बाली की 'एक तश्वीर' आदि कहानियों में मातृत्व के स्वीकार की ही दृष्टि पाई जाती है। मालती जोशी की 'मध्यांतर' पर मधुरेश जी का कहना है कि "मालती जोशी के संग्रह मध्यांतर की कहानियां अनुभव विस्तार के लिए बहुत दूर न जाकर अपने सुपरिचित क्षेत्र को ही गहरा और व्यापक बनाने की कोशिश का परिणाम है।" 2 दूसरी ओर ऐसी कहानियां भी हैं जिनमें मातृत्व को एक भार के रूप में नारी-स्वतन्त्रता में बाधक माना गया है। सिम्मी हर्षिता की 'कमरे में बन्द आभास' संग्रह की 'चक्रभोग' कहानी में मातृत्व के प्रति यही दृष्टि है, "बच्चे .....बच्चे कौन पैदा करेगा ? हर वक्त पिन्न - पिन्न। किसी से पाल-पोसे उधार ले लूंगी।" वस्तुतः आठवें दशक में हिन्दी कहानी में मातृत्व के प्रति दोनों प्रकार के दृष्टिकोण मिलते हैं। इस संग्रह पर डॉ. हरदयाल का कहना है कि, "इस संग्रह की कहानियों में अन्तर्मुखता का प्रतिबिम्ब मिलता है।...अन्तर्मुखता का परिणाम यह हुआ है कि सिम्मी हर्षिता की प्रायः सभी कहानियां ऐसी हैं जिसमें स्थूल घटना तत्व नगण्य है। सब कुछ सूक्ष्म मानसिक स्तर पर घटित होता है।" 3

आधुनिक समाज में दाम्पत्य सम्बंध भी आज प्रेम संबंधों की उस ऊष्मा से युक्त नहीं है जो उससे अपेक्षित है। दाम्पत्य संबंधों में दरार, टूटन, विघटन और चूकने के कई कारण हैं - कहीं उसका कारण पति-पत्नी के बीच किसी तीसरे की उपस्थिति है, कहीं इस उपस्थिति का मात्र शक है, कहीं उसका कारण अत्याधुनिक जीवन शैली है, कहीं पत्नी की नौकरी, कहीं अतृप्त काम तो कहीं एक-दूसरे से बहुत अधिक अपेक्षाएं, कहीं बांझपन, कहीं नारी का व्यक्ति-स्वातन्त्र्य कहीं कुछ और। आठवें दशक की कहानी में इन संबंधों को अत्यंत बारीकी और गहराई से विश्लेषित किया गया है। संबंधों की वस्तुस्थिति को ही कहानी में नहीं दिखाया गया अपितु उन्हें ऐसे बिन्दु, ऐसे कोणों से उठाया गया है कि उनके बीच एक सार्थक सोच विकसित होती दिखाई देती है। इस दौर की कहानियों में दाम्पत्य गत दूरियों पर पुरुष लेखकों से अधिक सशक्त रूप में महिला कहानीकारों ने लिखा है। इसका कारण यह है कि उन्होंने स्वयं अपनी अनुभूतियों तथा भोगे हुए यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति की है। इस दशक से पूर्व इस दाम्पत्य संबंधों पर केवल पुरुष-दृष्टि से लिखा गया था, महिला-दृष्टि का अभाव रहा है। आठवें दशक के दौर में इस विषय को केन्द्र बनाकर सर्वाधिक और अत्यंत सशक्त रूप में

दीप्ति खण्डेलवाल ने लिखा है। दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी संग्रहों - 'कड़वे सच', 'धूप के अहसास', 'सलीब पर', 'दो पल की छांह', 'नारीमन', 'औरत और नाते', की अनेक कहानियों - 'क्षितिज', 'शेष-अशेष', 'एक पारो पुरवैया', 'देह की सीता', 'ये भी कोई गीत है', 'वह', 'धूप का अहसास', आदि से गुजरते हुए सहज ही लगता है कि नारी के अनछुए दर्दों और जख्मों के दर्द का अहसास हो रहा है। दीप्ति की सभी कहानियों में दाम्पत्य की टूटन की पीड़ा है। वें कहती हैं कि जैसे-"किसी तृप्ति के लिए सिर पटकती मेरी नारी चेतना होश और मूर्च्छा के बीच छटपटाती रही.....।"

दाम्पत्य संबंध में तीसरे की उपस्थिति या शक भी इस संबंध की मधुरता को विषधर बना देता है। यह स्थिति पति और पत्नी दोनों ओर से हो सकती है, किन्तु शक्य या शंकालु स्वभाव के कारण स्त्रियां शक की व्याधि से ज्यादा पीड़ित रहती हैं। उन्हें लगता है कि हर लड़की या स्त्री उसके पति पर डाका डालने वाली है। ममता कालिया के संग्रह 'सीट नम्बर छह' की इसी कहानी में महिलाओं की इस प्रवृत्ति की अच्छी खबर ली है, "अपने पोंगों से पोंगे पाटबेलीड पति को वे ऐसे संभाल कर रखती हैं जैसे लाटरी का लकी नम्बर हो।" तथा 'पीली लड़की' में भी ममता कालिया ने यही स्थिति व्यक्त की है- 'औरतें पति को अंगूठी और ब्लाउज के साथ-साथ निजी पूंजी ही समझती हैं और अक्सर सोचती हैं कि दुनियाभर की लड़कियां उनके पति का डाका डालने वाली हैं।" नारी की इस मनःस्थिति को गंगाप्रसाद विमल और मणिका मोहिनी ने भी व्यक्त किया है। मणिका मोहिनी का 'अभी तलाश जारी है' संग्रह की 'कैरम की गोद', 'एक ही बिस्तर', 'दुश्मन' आदि कहानियों का कथ्य यही है। दाम्पत्य संबंधों के टूटने का एक कारण है.....काम-सुख की अतृप्ति। पति या पत्नी का किसी तीसरे के पास जाने का कारण भी यही है। इस संग्रह पर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कहना है कि, "सभी कहानियां आकार में जितनी छोटी हैं अपनी संवेदना में उतनी ही सच्ची और अभिव्यक्ति में पूर्ण।...कहानी लेखिका ने नारी-पुरुष संबंधों का चित्रण बड़े साहस के साथ किया है। उसकी अभिव्यक्ति निर्मम और बेबाक है। उसमें किसी तरह का दुराव छिपाव नहीं। नारी-पुरुष और पति पत्नी का सूक्ष्म मनोविज्ञान इन कहानियों में बड़ी सच्चाई के साथ उद्घाटित हुआ है।" 4 इस विषय को लेकर आठवें दशक में अनेक ईमानदार प्रामाणिक अनुभूति युक्त कहानियां लिखी गयी हैं।

### आठवें दशक की कहानी में सामाजिक परिवेश-बोध

आठवें दशक की हिन्दी कहानियों में व्यक्त जीवन-बोध का दूसरा रूप सामाजिक बोध से जुड़ा हुआ है। इस दशक के कहानीकार अपने गतिशील और परिवर्तनशील परिवेश के प्रति जागरूक दृष्टि रखते हैं। वे अपने सतत गतिमान परिवेश से गंभीर और गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। उसके हिस्से हैं। उनका यह जुड़ाव पिछले दशकों की तरह रोमानी ग्रस्त नहीं है। बल्कि वह अधिक तटस्थ और यथार्थपरक है। आठवें दशक के कहानीकारों ने अपने परिवेश की समस्त हलचलों, हरकतों और गतिविधियों पर सतर्क एवं सजग दृष्टि लगा रखी है। वह अपने परिवेश के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, दफतरी-संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को नये कोण से देखते और चित्रित करते हैं। उन विसंगतियों में पिसते, शोषित और पीड़ित होते मनुष्य की कराह को वाणी देते हैं। सामान्य मनुष्य की जिन्दगी, उसके जीने के ढंग, जिजीविषा, उसकी समस्याएं और चिंता आदि को अपनी पैनी और बारीक दृष्टि से पकड़कर उसका प्रामाणिक और जीवंत वर्णन करते हैं। आठवें दशक में उभरकर आनेवाली नयी कथाकार पीढ़ी के लेखकों ने कहीं जीवनगत वास्तविकता में निहित विसंगतियों को उभारा है, कहीं अन्तर्विरोधों को, कहीं उनमें आत्मसंघर्ष व्यक्त हुआ है तो कहीं सामाजिक-राजनीतिक बोध। वास्तविकता के प्रति उनका दृष्टिकोण कहीं व्यंग्यात्मक है, कहीं आलोचनात्मक तो

कहीं निर्णयात्मक। आठवें दशक की कहानी में इस प्रवृत्ति को लक्षित करते हुए नरेन्द्र मोहन कहते हैं, “आठवें दशक की कहानी में वास्तविक स्थिति को देखते हुए संघर्ष के बाहरी और भीतरी, वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भ और रूप व्यक्त हुए हैं। वास्तविकता और लेखकीय चेतना के टकराव के परिणाम स्वरूप इस दौर की अनेक कहानियों में आत्मसंघर्ष की चेतना प्रकट हुई है। यहां यह ध्यान में रखना जरूरी है कि यह आत्मसंघर्ष मानसिक उलझन या मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का पर्याय नहीं है, यह बाहरी स्थितियों से टकराव की हालत में संभव हुआ है। इसलिए आठवें दशक की कहानियों में आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति पूर्व दशक की कहानियों में व्यक्त आत्मसंघर्ष से किंचित भिन्न है।”<sup>5</sup> इस वास्तविक आत्मसंघर्ष की प्रवृत्ति को आठवें दशक में हिन्दी कहानीकारों गिरिराज किशोर, ममता कालिया, भीष्म साहनी, सुरेश उनियाल, सतीश जमाली, रवीन्द्र कालिया, माहेश्वर, रमेशचन्द्र शाह, श्रवण कुमार, भीमसेन त्यागी, असगर वजाहत, बदीउज्जमा, नमिता सिंह, मिथिलेश्वर, मधुकर सिंह आदि ने अपनी अलग अलग रचनात्मक स्तरों पर अभिव्यक्त किया है।

मनुष्य को अपने जीवन में सबसे पहले और सबसे अधिक आर्थिक स्थिति से ही संघर्ष करना पड़ता है क्योंकि अर्थ ही उसके जीवन को संचालित करता है। आर्थिक संकट ने आम आदमी के सरल सहज जीवन में जहर घोल दिया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति की नित्य बढ़ती महंगाई, टेक्सों का बोझ, कम सैलरी आदि से उसके जीवन की स्थितियां बहुत ही जटिल और कठिन बनती जा रही है। आठवें दशक के कहानीकारों ने अपनी कहानियों में आम आदमी की गरीबी, जिजीविषा, अर्थाभाव, दरिद्रता, जहालत, बदहाली और बेबसी को नये कोण और नयी दृष्टि से मार्मिक चित्रण किया है। गिरिराज किशोर के ‘हम प्यार कर लें’ संग्रह की ‘गुलाब जामुन खाइये’ में सामान्य मजदूर की इच्छाओं की अतृप्ति का बड़ा ही प्रामाणिक चित्रण किया है तथा ‘ठंडक’ कहानी में गिरिराज किशोर सामान्य जन के आर्थिक अभावों को ही चित्रित करते हैं— “बाहर आकर भी आदमी रहेगा तो मुल्क में ही। मुल्क भर की हालत लगातार एक-सी होती जा रही है।” गिरिराज किशोर की ‘ठंडक’ कहानी में शब्द पूरे देश के माहौल को स्पष्ट कर देते हैं। से. रा. यात्री की ‘एक अंधेरे का सैलाब’ तथा ‘दर्पण’ कहानियां में ऐसा ही सामान्य आदमी है जो अपनी जिन्दगी के अंधेरों को थोड़ी देर के लिए खरीदी रोशनी से दूर करना चाहता है किन्तु यह भी उसकी पहुंच में नहीं है।

जीवन के अर्थाभावों की अधिकता के कारण आम-आदमी जीवन की व्यर्थता बोध का अनुभव करता है उसे ये जिंदगी संदर्भविहीन, खोखली, नीरस और बोझ लगने लगती है। ममता कालिया ने ‘एक अदद औरत’ संग्रह की ‘बसंत सिर्फ एक तारीख’ कहानी में इसी मनःस्थिति का प्रामाणिक और जीवंत चित्र खींचा है तथा ममता जी की ही ‘तस्की का हम न रोय’ में मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन के अर्थाभावों का चित्रण है। भीष्म साहनी की ‘पटरियां’ संग्रह की इस कहानी के ये शब्द ही आज के जीवन का सत्य है, “सबसे बड़ी चीज दुनिया में पैसा है, पोजीशन है। बाकी सब बकवास है। ताकत और पैसा और रौब-दाब इनसे बढ़कर कोई चीज दुनिया में नहीं है।”

जीवन के इस अर्थाभाव को केवल शहरों या महानगरीय जीवन में ही नहीं देखा गया, ग्रामीण परिवेश के अंचलों की गरीबी और अर्थाभाव से भरी जिन्दगी को भी आठवें दशक के कहानीकारों ने देखा है तथा उसे लेखनीबद्ध किया है। सुरेश उनियाल की ‘दरअसल’ संग्रह की ‘शाका बड़ी’ तथा ‘कीड़ा’ आदि कहानियों में पहाड़ की गरीबी को वाणी मिली है। मजदूरों की आर्थिक विपन्नता, नारकीय जीवन, दरिद्रता को आठवें दशक के जनवादी कहानीकारों सतीश जमाली, राकेश वत्स, कामतानाथ, सुदीप, जितेन्द्र भाटिया, सुभाष पंत, आदि ने बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। सतीश जमाली की ‘प्रथम पुरुष’ संग्रह की कहानी ‘जीव’ में मजदूर वर्ग की नारकीय जिन्दगी को कुशलता से

अभिव्यंजित कर उसे संपन्न वर्ग की जिंदगी के समानान्तर रखकर देखा गया है। ‘जीव’, ‘पुल’, ‘युद्ध’ जैसी जमाली की सशक्त कहानियों का विषय यही है। इस संग्रह पर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की राय है कि, “सतीश की कहानियों में साठोतरी रचना के मुहावरे साफ-साफ देखे जा सकते हैं। इनमें आज के चारों ओर की परिस्थितियों का (हत्या, हड़ताल, जुलूस, नारा, गंदगी असमानता आदि) चित्रण हुआ है। अंत में जागरूक पाठक के लिए इतना कहना शेष रह जाता है कि समर्थ रचना के लिए भाषा को जितना वस्तु की ओर ले जाना जरूरी है उतना ही उससे अलग अन्दर की ओर भी। पाठक कहानीकार सतीश से अनुभव के विस्तार और अनुभव के शोध की अपेक्षा करता है जो रचना के लिए बहुत जरूरी है और जिसकी कमी उनकी कहानियों में महसूस होती है।”<sup>6</sup> प्रयागनारायण त्रिपाठी कहते हैं, “इस संग्रह की कहानियों को कहानियां कहने के बजाय अकहानियां कहना मैं ज्यादा ठीक समझता हूं।”<sup>7</sup> रवीन्द्र कालिया के ‘गरीबी हटाओ’ तथा माहेश्वर के ‘स्पर्श’ संग्रह की ‘मृत्युदण्ड’ में अत्यंत व्यंग्यात्मक रूप में गरीबी हटाने की सरकारी योजनाओं की खिल्ली उड़ाई गई है। इन्होंने अपनी कहानी में समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है। पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग। इनकी यह दृष्टि प्रखर वामपंथी सोच को प्रकट करती है। रमेशचन्द्र शाह की ‘जंगल की आग’ संग्रह की ‘अंधड़’ कहानी का नायक ऐसी विकृत व्यवस्था को देखकर परेशान है।

इस दशक की अधिकांश कहानियां निम्न वर्ग की गरीबी एवं मध्यवर्ग के आर्थिक अभावों से ग्रस्त जिंदगी को ही सामने लाती है। प्रायः सभी कहानियों के पात्र विभिन्न रूपों में अपने अस्तित्व को कायम करने की एक भयंकर लड़ाई लड़ रहे हैं। विषम आर्थिक परिस्थितियों में वे अपनी चादर की लम्बाई हमेशा छोटी पड़ते पाते हैं जबकि मूलभूत आवश्यकताएं निरंतर बढ़ती जा रही हैं। श्रवण कुमार की ‘जहर’ संग्रह की ‘मैं’ कहानी में नायक की विषम आर्थिक स्थिति का बड़ी मार्मिक दृष्टि से चित्रण किया गया है। जिसमें अनुभव की प्रामाणिकता, ठोस वास्तविकता के कलात्मक संयोजन की छाप है। अतः आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन जीने की विषम आर्थिक स्थितियों का बारीक चित्रण बहुत ही भावनात्मक रूप में हुआ है। इस दशक की हिंदी कहानी की मूल विशेषता यह है कि वह जिंदगी के अभावों और समाज के विभिन्न वर्गों में फैली गरीबी को प्रखर आवाज देती है। जो गरीबी और आर्थिक विपन्नता का एक नया पहलु उजागर करती है। इस दशक की कहानीकार आर्थिक स्तर पर व्यक्ति के द्वारा किये जा रहे संघर्ष में एक सहयात्री की समर्थ भूमिका निभाते हैं। यही इस दशक की हिंदी कहानी की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

आर्थिक अभावों से घिरी आज की जिंदगी की एक बहुत बड़ी समस्या और विडम्बना है – शिक्षित युवा वर्ग में फैली बेरोजगारी या बेकारी की समस्या। नौकरी न मिल पाने की पीड़ा नवयुवकों को न जाने कितने स्तरों पर भोगनी पड़ती है। प्रत्येक इंटरव्यू में जाकर अस्वीकृत होने पर मनोबल का गिरना, अपने से कम क्षमता और योग्यता वाले उम्मीदवार की पैसे अथवा सिफारिश के आधार पर नियुक्ति हो जाना आदि से नवयुवक भीतर से टूट जाता है। नौकरी न मिल पाने से आपसी पारिवारिक रिश्तों का संवेदना-शून्य हो जाना, उसे निकम्मा करार दिया जाना आदि स्थितियों का अंकन आठवें दशक के सफल कहानीकारों ने बड़ी कुशलता से किया है। भीमसेन त्यागी का ‘जबान’ संग्रह की ‘जमी हुई रात’ में देवेन इन्हीं सब परिस्थितियों से गुजरता है। ‘जबान’ संग्रह पर मधुरेश का कहना है कि “जबान की कहानियां निम्नमध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को छोटे-छोटे आत्मीय चित्रों द्वारा अंकित करने की कोशिश करती है।”<sup>8</sup> मंजुल भगत की ‘नालायक बहू’, सिम्मी हर्षिता की ‘चक्रव्यूह’, दीप्ति खण्डेलवाल की ‘विषपायी’ जितेन्द्र भाटिया की ‘देवसेन गुप्ता के जीवन का एक दिन’, मधुकर सिंह की ‘फिलहाल’, रामदरश मिश्र



की 'एक रात', श्रवण कुमार की 'बौना', रमेश बत्रा की 'जिंदा होने के खिलाफ' आदि कहानियों में यही बेकारी की समस्या को बड़े मार्मिक रूप में उठाया गया है।

आठवें दशक की हिंदी कहानी में जब अपने चतुर्विध परिवेश के प्रति जागरूक दृष्टि आयी तो उसका कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा जो कथाकार की दृष्टि से ओझल या छूटा हो। यद्यपि इस दशक में नगरीय और महानगरीय जीवन ही कहानी का केन्द्रीय तत्त्व रहा है और उसकी संवेदना की अभिव्यक्ति मुख्य सरोकार। किंतु फिर भी इसके बावजूद आठवें दशक के कहानीकार ग्रामीण जीवन परिवेश की ओर आकर्षित हुए। ग्रामीण समाज की परिवर्तित परिस्थितियों को शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, रामदरश मिश्र, काशीनाथ सिंह, भीमसेन त्यागी, सुरेश उनियाल, गोविंद मिश्र, विवेकी राय, हिमांशु जोशी, असगर वजाहत, मिथिलेश्वर, बलराम, शिवमूर्ति आदि ने अपनी कहानियों में अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। भीमसेन त्यागी के 'जबान' संग्रह की कहानी 'कविप्रिया' ग्रामीण जीवन में नवयुवक के अन्तर्द्वंद्व का चित्रण किया है। रामदरश मिश्र ने बदली हुई परिस्थितियों के साथ गांव के आदमी की सोच में आये वैचारिक परिवर्तन को लक्षित किया है। उनकी 'दिनचर्या' संग्रह की 'एक अधूरी कहानी' में भउजी जैसे सशक्त नारी चरित्र हैं जो स्त्री-पुरुष के लिए बनाये गये अलग-अलग नैतिक मानदण्डों को गंभीरता से चुनौती देते हैं। ग्रामीण सामाजिक विसंगतियों, विद्रुपताओं को मधुकर सिंह, मणि मधुकर, असगर वजाहत, मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियों में उभारा है। मधुकर सिंह की 'बुद्धू' कहानी इसी सत्य को उजागर करती है कि आज गांव का आदमी वह सीधा-सादा आदमी नहीं रह गया है जिसकी कल्पना की जाती रही है, आज वह इतना चतुर-खिलाड़ी और कांड्या हो गया है कि अच्छे-अच्छों के कान कुतर देता है। मिथिलेश्वर के 'दूसरा महाभारत' संग्रह की 'उम्रकैद' तथा 'मेघना का निर्णय' इसी की प्रामाणिकता को मोहर लगाती है। हिमांशु जोशी की 'जलते हुए डैने' कहानी में राहत कार्य के नाम पर हुई धांधली को उघाड़ा गया है। मणि मधुकर के 'त्वमेव माता' संग्रह की 'जखम के चारों ओर' में लूणिया के बहाने वहां के उस सामान्य आदमी की संघर्ष पूर्ण जिन्दगी की झलक मिलती है जिसे भूख और अकाल की स्थिति के कारण जमीन और जोरू दोनों से हाथ धोना पड़ता है। इसी तरह मणि मधुकर ने 'उजाड़ और अधमरे', 'फांसी', 'त्वमेव माता' आदि कहानियों में राजस्थान की आकालग्रस्त स्थितियों का सजीव चित्रण किया है। अतः कह सकते हैं कि आठवें दशक की हिंदी कहानी में ग्रामीण जीवन-परिवेश अपनी समग्रता-पूर्णता, विविधता और व्यापकता-गहराई में आया है। आजादी के बाद गांव में जो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, मूल्यों और संबंधों का विघटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार आया है उसे आठवें दशक की कहानी पूरी सच्चाई-ईमानदारी और प्रामाणिकता से चित्रित करती है।

आठवें दशक की कहानी ने ग्रामीण-परिवेश के अलावा शहरी, नगरीय, महानगरीय जीवन-परिवेश और परिस्थितियों को भी अपनी संवेदना का विषय बनाया है। महानगर में व्यस्त जिंदगी से मानवीय संबंधों में एक प्रकार का सूनापन रहता है। मां-बेटी, भाई-भाई, भाई-बहन, पति-पत्नी, माता-पिता और संतान जैसे निकट संबंध भी बिल्कुल संवेदना शून्य हो जाते हैं। महीप सिंह के 'कितने सम्बन्ध' संग्रह की 'सन्नाटा' कहानी का विषय यही है। महानगर में पारिवारिक संबंधों में कितना बिखराव, कितना टूटन, कितना बेगानापन और कितनी कटुता का प्रवेश हो गया है इसका अहसास ये कहानी कराती है। गोविंद मिश्र के संग्रह 'अन्तःपुर' की 'गलत नम्बर' कहानी में महानगर में रहने वाले पति-पत्नी के संबंधों की स्नेह-रिक्तता और संवेदना-शून्यता को ही व्यंजित करती है। महानगरीय-जीवन में दो प्रकार के वर्ग हैं- उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। दोनों वर्गों की जीवन-शैली, मूल्य, सोच, व्यवहार और संस्कृति भिन्न भिन्न है। सतीश जमाली के संग्रह 'प्रथम पुरुष' की 'जीव' जैसी कहानी महानगरीय-जीवन

की एकरसता, ऊब, अजनबीपन, एकाकीपन को सशक्त ढंग से प्रस्तुत करती है। सुधा अरोड़ा की 'दमनचक्र', श्रीराम वर्मा की 'मकान की यात्रा', रश्मि तन्खा की 'मकबरे', सिद्धेश की 'सचाई' आदि कहानियों में महानगरीय जीवन की कड़वाहट, विडम्बना, विसंगतियों, विषमताओं, कठिनाइयों और समस्याओं का जीवंत चित्रण बड़ी बेबाकी से दिखाया है।

आठवें दशक की कहानी में भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, प्रशासन-तंत्र, सामाजिक क्षेत्रों में फैला भ्रष्टाचार, संस्थानों एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा दफ्तरों में फैली भ्रष्ट व्यवस्था को भी कहानीकारों ने विशेष रूप से दिखाया है। महीप सिंह के 'कितने सम्बन्ध' संग्रह की 'एक गुण्डे का समय बोध', माहेश्वर के 'स्पर्श' संग्रह की 'शुरुआत', हिमांशु जोशी के 'रथचक्र' संग्रह की 'कोई एक मसीहा', गोविन्द मिश्र के 'धांसू' संग्रह की 'धांसू', सतीश जमाली के 'प्रथम पुरुष' संग्रह की 'सत्ताधारी' और 'प्रथम पुरुष' में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक, संस्थाओं की क्रूर व्यवस्था को संश्लिष्ट रूप में चित्रित किया गया है। जितेन्द्र भाटिया की 'शहादतनामा' में औद्योगिक संस्थाओं में फैली भ्रष्ट व्यवस्था का, मिल मालिक और मजदूरों के संबंधों की कहानी है। इस फैले हुए भ्रष्टाचार के प्रति व्यापक स्तर पर युवा पीढ़ी का तीव्र आक्रोश और विद्रोह भी प्रखर स्वर में व्यक्त हुआ है। इस दशक के जनवादी कहानीकार भैरवप्रसाद गुप्त, काशीनाथ सिंह, विष्णु प्रभाकर, इसरायल, माहेश्वर, भीष्म साहनी, हृदयेश, कामतानाथ, जितेन्द्र भाटिया, सुभाष पंत, राकेश वत्स, आदि कहानीकारों ने व्यवस्था की क्रूरता के खिलाफ आम आदमी की पक्षधरता और प्रतिबद्धता दिखाते हुए अपने विरोध का तेवर ज्यादा रोषपूर्ण और आक्रामक मुद्रा लिये हुए प्रकट किया है।

इसके अतिरिक्त आठवें दशक में अनेक कहानियां भारत-पाक विभाजन की त्रासदी और पीड़ा को लेकर भी लिखी गई हैं। विभाजन की त्रासदी, विभीषिका, दुख-दर्द, साम्प्रदायिकता को बहुत ही मानवीयता के साथ, बड़े प्रामाणिक ढंग से चित्रित किया है। भारत-पाक और-भारत विभाजन, साम्प्रदायिकता को लेकर भीष्म साहनी ने 'अमृतसर आ गया है', श्रवण कुमार ने 'जहर' संग्रह की 'मामूली लोग', सुदीप ने 'अन्तहीन' संग्रह की 'हालात', बदीउज्जमा के संग्रह 'पुल टूटते हुए' की 'अंतिम इच्छा' कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' संग्रह की 'नया' आदि कहानियों में बंटवारे के दर्द को उससे उपजी विभीषिका, साम्प्रदायिकता, दंगों और आतंकवाद को बड़ी ही मार्मिकता से व्यक्त किया है।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि आठवें दशक की हिन्दी कहानी अपनी विविधता में अपने समय, समाज, परिवेश तथा मानवीय संबंधों के समस्त प्रमुख प्रश्नों, चिंताओं तथा समस्याओं से टकराती है। और यह अहसास कराती है कि आज कहानी में सामाजिक-मानवीय जीवन की चिंता सर्वाधिक प्रमुख हैं। आज वह मानव-जीवन यथार्थ के सम्पूर्ण हलचलों और हरकतों को देखती है। आठवें दशक की कहानियों में व्यक्त जीवन-बोध अपने समय की सच्चाइयों का प्रामाणिक और सशक्त दस्तावेज हैं। चंचल चौहान के शब्दों में, "आठवें दशक की हिंदी कहानी का सारतत्त्व है शोषण से मुक्ति की वह तड़प जो धीरे-धीरे तमाम मेहनतकश अवाम की चेतना का हिस्सा बनती जा रही है। इसी अर्थ में वह उस समूची मुक्तिकामी परंपरा से जुड़ती है जिसकी जड़ें स्वाधीनता आंदोलन के वक्त प्रेमचंद ने मजबूत की थीं।"<sup>9</sup> इस दशक की कहानियों की शिल्प संबंधी उपलब्धियों पर डॉ. हरदयाल का कहना है कि, "इस दशक में ऐसी कहानियों की संख्या अधिक है जिनमें एकाधिक शिल्प-प्रविधियों का संश्लिष्ट उपयोग किया गया है। इस दशक की कहानियों में प्रयुक्त ऐसी शिल्प-प्रविधियां कम ही हैं, जिनका प्रयोग पहले के हिंदी कहानीकारों ने न किया हो। आठवें दशक के कहानीकारों का महत्व इस बात में है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शिल्प-प्रविधियां कथावस्तु के प्रति उनके विशेष दृष्टिकोण को उजागर करती है।"<sup>10</sup>

**संदर्भ**

1. हिन्दी साहित्याब्दकोश-1977: सं. गोपाल राय, पृ. 31, प्रकाशन ग्रंथ निकेतन पटना, सं. 1977
2. हिन्दी साहित्याब्दकोश-1977: सं. गोपाल राय, पृ. 30, प्रकाशन ग्रंथ निकेतन पटना, सं. 1977
3. हिन्दी साहित्याब्दकोश-1975: सं. गोपाल राय, पृ.105, प्रकाशन ग्रंथ निकेतन पटना, सं. 1975
4. हिन्दी साहित्याब्दकोश-1976: सं. गोपाल राय, पृ.124, प्रकाशन ग्रंथ निकेतन पटना, सं. 1976
5. आधुनिकता के संदर्भ में हिंदी कहानी : नरेंद्र मोहन, पृ. 63, जयश्री प्रकाशन दिल्ली, सं. 1982
6. हिन्दी साहित्याब्दकोश-1972: सं. गोपाल राय, पृ.99, प्रकाशन ग्रंथ निकेतन पटना, सं. 1972
7. आजकल पत्रिका : नवम्बर 1972, पृष्ठ 40
8. हिन्दी साहित्याब्दकोश-1980: सं. गोपाल राय, पृ.46, प्रकाशन ग्रंथ निकेतन पटना, सं. 1980
9. हिंदी कथा साहित्य: विचार और विमर्श : चंचल चौहान, पृष्ठ 68, साहित्य भंडार इलाहाबाद, सं. 2011
10. आलोचना कर्म: डॉ. हरदयाल, पृष्ठ 159, लोक प्रकाशन दिल्ली, सं. 1991